कहानी

मोची

सारिका ठाकुर

जेठ की चिलचिलाती धूप अपने पड़ाव पर थी। रास्ता सूनसान... सब अपने घरों में कैद हो, मानो प्रतीक्षा कर रहे थे मौसम के अनुकूलन की। सड़कों पर एक भी वृक्ष न थे, तो छाँव और हवा की क्या गुंजाइश। किसी गटर के किनारे पोल से दुबक कर बहते नाली के पानी में कुत्ते बेसुध सोए पड़े थे, मानो सोए बगैर काम न चल सकता हो। उसी सड़क पर नंगे पांव कांध में बक्सा लिए चल रहा था वहा घाम में पसीने से शरीर लथपथ है, आंखों पर कुछ बूंद टपक उसे और परेशान कर देते हैं। वह हाथ से पसीना पोछ आंख खोलने का प्रयास करता है और बीच बीच में बोल पड़ता है-

"मोची... मोची..."

"सिलवाइए, जूता चप्पल सिलवाइए....."

और इधर उधर देखता है, पर उसकी आवाज सुनने वाला भी कोई नहीं। कुत्ते भी कनखी मार कर देख फिर अपनी प्रारंभिक अवस्था में लौट जाते हैं। तभी एक दरवाजा खुलता है। वह आस से ठहर जाता है, पर मोहल्ले की एक महिला जूठन फेक उसे घूरकर चली जाती है। कुत्ते आहट पाकर लुझ पड़ते हैं और वह मूक बना देखता भर रहता है। अचानक एक ही स्थान पर खड़े-खड़े उसके पैर जल उठते हैं और वह उससे बचने के लिए पैर बढ़ाता है और फिर धीमें स्वर में कह उठता है-

"क्या भाग्य का खेल है! साथ एक जोड़ी चप्पल भी नहीं और इहो टूट गया। टूटा सो टूटा, पहनने लायक भी नहीं बचा। चार पैसा की आमदनी भी नहीं..."

वह सोच रहा था, कुछ पैसा आ जाए तो आज लौट पड़े, क्योंकि आज उनकी हिम्मत मानो जवाब दे रही थी। तभी एक घर का किवाड़ खुलता है और पैंतीस वर्षीय महिला निकलती है। महिला धीमें स्वर में बोल उठती है:

"बाबा! चप्पल सी देंगे?"

उसकी आंखों में आशा की चमक आ गई, मानो आज का काम हो गया और रोटी का इंतजाम भी...। झट हुलस कर बोला- "हां बेटा! सिलने ही तो आए हैं। लाओ, लेते आओ"

स्त्री चप्पलों का ढेर लेकर आती है। करीब आठ जोड़ी चप्पल। मानो कितने वर्षों से जमाए रखा हो उसने उनके सामूहिक इलाज हेतु। वृद्ध खुश था, कि ईश्वर के घर देर है,

सारिका ठाकुर महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र में पी-एच.डी. शोधार्थी हैं।

अंधेर नहीं। मोल-भाव हुआ और सत्तर रूपये में बात तय हुई। कुछ देर रुक कर अंगड़ाई लेती हुई वह भीतर चली गई।

काम तो वाकई बड़े देर का था। धूप भी वैसी ही, उमस अब भी वैसी ही और उस पर लू... । वह वहीं दरवाजे पर अपना टूटा छाता निकालकर, लगा बैठ गया और ऑपरेशन शुरू किया। बीस वर्षों का अनुभव साथ दे रहा था, पर ना उसका मन साथ देता। पैरों के छल्ली होने, पेट भूख के मारे ममोड़ने और उम्र के तोड़ने से वह कुछ शिथिल पड़ता जा रहा था। विवशतावश हिम्मत बांध काम में जुड़ जाता। रह-रह मन में विचार उठते- "कल बीमार भी पड़ा तो रोटी को न सोचना पड़ेगा। आज पेट भर सब खाएंगे... । वह कितनी खुश होगी..."

उनकी कोई संतान न थी। बस पत्नी ही सहचरी और सर्वस्व। जीवन रुपी ईश्वर का सत्कार कर रहे थे हर हाल में। इन्हीं सब पर सोचते-सोचते उसने काम सार दिया था। दोपहर भी बीतने वाली थी। सड़कों पर हल्की चहल-पहल शुरु थी। चट काम सार उसने आवाज दिया-

"हां बेटी! सिल गया।"

आवाज ना आने पर दरवाजे की कुंडी बजाई। महिला आंख मलती बाहर आई.

"हो गया बाबा?"

"हां! हां! देख लो बेटी। जहां तक बन पड़ा कर दिए। अभी चलेगा बहुत दिन।"

"हाँ! तो नया था। खाली सिलाई टूटा था।"

वह अपना सामान भरने लगे। महिला ने चालाकी करके एक जोड़ा चप्पल घर की तरफ फेक दिया। उसने ध्यान नहीं दिया।

"पैसा दे दो बेटी। बहुत समय हो गया। जल्दी जाना है"

"हाँ! अब तो जल्दी जयबे करेंगे।"

वह अचंभित देखता भर रहा। अचानक इस मृदुल ध्वनि में कर्कशता कैसे आ मिली। महिला बोले जा रही थी: "ऐसे कैसे दे-दें। हाँ?"

उसकी आँखे तन गयीं। क्रोध झलकने लगा और अलग ही व्यवहार में पेश आना शुरु कर दिया उसने। वृद्ध ने विनय के स्वर में कहा: "क्या हो गया बेटी?"

"बप! बप! बेटी मत कहिए। आपको बाबा क्या बोल दिये, मन बढ़ गया!"

"ऐसा क्या किया हमने?"

"क्या किये? सात जोड़ा दिए थे न? आपलोग विश्वास के लायक नहीं है। सात सौ का चप्पल था।" अब वृद्ध का ध्यान जोड़ों पर गया। वाकई सात ही थे। वह हतप्रभ हो गया और इधर उधर नजर दौड़ाने लगा। महिला का क्रोध परवान पर था। वह चुप होने का नाम ही नहीं लेती।

उसने सहम कर कहा: "देखो बेटी! तुम ही भीतर ले गई होगी देखते-देखते! और कोई आया नहीं है।"

तब तक वह और बुरी तरह से उस पर टूट पड़ी: "हे राम! हमको चोर कहते हैं। छोटे जात का आदमी। हम चोर हैं?"

"नहीं! नहीं बेटी! मेंरी इतनी जुर्रत। हम तो..."

"चुप! एकदम चुप! अभी बुलाए मोहल्ले वालों को? यहाँ घुसना बंद हो जाएगा।"

"नहीं बेटी! हम तो इस धूप में दर-दर भटक कर चार पैसा कमा कर गुजर-बसर करते हैं। गरीब के पेट में लात मत मारो बेटी।"

आसपास के लोग एकत्र हो चुके थे और वृद्ध को संदेह की दृष्टि से देख रहे थे। वह चुपचाप दोनों हाथ जोड़े खड़ा मानो अपराधी हो। आंखों से आंसू झर रहे थे। हृदय दुःख से फटा जा रहा था। एक के पूछने पर मानो अवसर मिलते ही वह गढ़ी-गढ़ी बातें सुनाना शुरू कर दी। शाम हो चला था। अब उसे ना भूख लगी थी और ना ही प्यास। कलेजा धक-धक कर रहा था। जाने क्या होगा? बात पूरे मोहल्ले में फैल गई। महिला ने झुंझलाकर कहा: "अब खड़ा काहे है? जाईए, भागिये यहाँ से"

पैसे....????

"पैसा? बच गये सही सलामत, सुकर मनाईए। नहीं तो पुलिस बुलाकर अंदर करा देते हम। हमको तो पहले ही शक था। खुद के पैर में चप्पल नहीं, का पता घरवाली का भी न हो। तो ई बहाने वही करने आए हैं। जाइये।" और मोहल्ले की स्त्रियों के साथ कथा बाचने में व्यस्त हो गई। उसके हाथों में शक्तियां मानो समाप्त हो गयी थीं। भीतर-भीतर कुछ टूट रहा था, जिनकी आवाज बाहर के शोरगुल में अपना अस्तित्व खो देती थी। आंखों से धार का बहना जारी था। मन कुछ चिंतित, कुछ सशंकित कि अब क्या? समय भी समाप्त हो चला है और हिम्मत तो आधे दिन ही साथ छोड़ चुकी थी। मानो शाम तक का मोहलत दी हो जैसे। धीरे से अपना बक्सा दोनों हाथों से उठा कांध पर पहुंचाने का असफल प्रयास करता, पर सफल ना हो पाता, पर अंततः सफलता हाथ लगी। उसी घर से एक छोटा बालक निकलकर हाथ लगा, कंधे तक पहुंचा उसे देखता भर रहा। मानो वह सत्य को पढ़ रहा हो उन डबडबी आंखों से... । बच्चे के सर पर हाथ फेर वृद्ध धीरे-धीरे आगे बढ़ गया। वह खड़ा उसे देखता भर रहा...